उत्तर-पूर्वी राज्यों में हिंदी भाषा-शिक्षण : समस्याएँ एवं समाधान
(विशेष संदर्भ : अरुणाचल प्रदेश)

अवधेश नारायण मिश्र
मीना कुमारी

भारत के उत्तर-पूर्वी सीमांत पर हिमालय की श्रेणियों की पूर्वी प्रशाखाओं में अवस्थित पूर्वोत्तर राज्यों की सुंदरता अनुपम और अप्रतिम है। हिमाच्छादित और हरीतिमामंडित पर्वतीय श्रृंखलाओं, सघन जंगलों, नदियों-झरनों के बीच बसा जीवंत पूर्वोत्तर क्षेत्र जिसे ब्रिटिशकाल में 'नेफा' (NEFA) नाम से अभिहीत किया गया है; देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 7.9 प्रतिशत भाग है। इसकी उत्तरी-पूर्वी सीमा से दक्षिणी-पश्चिमी सीमा तक के भाग को नारी शरीर एवं बीच में प्रवाहित लौहित्य (लोहित / ब्रह्मपुत्र) को उसकी रीढ़ (सुषुम्ना) के रूप में प्रकल्पित किया गया है। लगभग 2 लाख 62 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले पूर्वोत्तर राज्यों में 200 के करीब भाषाएँ/बोलियाँ बोलने वाले लगभग 400 समुदायों के 3.9 करोड़ लोग निवास करते हैं। यह जनजातीय समाज अथक परिश्रमी, जुझारु और शांतचित्त प्रवृत्ति का है। यद्यपि प्राकृतिक संसाधनों पर पूर्णतः आश्रित इन विभिन्न समुदायों में जल, जमीन और जंगल को लेकर हुए ऐतिहासिक संघर्षों की कुछ जमी हुई परतें, मनमुटाव, भावनाएँ और पूर्वग्रह भी वर्तमान में दृष्टिगोचर होते हैं जिनके कारण अंतरसामुदायिक और अंतरराज्यीय समन्वय एवं सहयोग का अभाव देखने को मिलता है, तथापि इनमें आपसी मेलजोल, घनिष्ठता और लोक- व्यवहार संबंधी स्थायी निकटता भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। पूर्वोत्तर की अधिकांश जनजातियों का इतिहास लिखित नहीं है, इसीलिए इनके जीवन-दर्शन व भावों को लोक कथाओं, मिथकों और प्रतीकों में अभिव्यक्ति मिली है। विविध बोलियों के बीच किसी सर्वमान्य भाषा-लिपि के अभाव के बावजूद इनमें भाषाई दुराग्रह नहीं है। ये जनजातियाँ अपने समतामूलक समाज और निराली जीवन-शैली के कारण भी बरबस सबका ध्यान आकृष्ट करती हैं। स्वाभिमान और शौर्य-प्रदर्शन इन जनजातियों की भूख है और यही इनकी जीवन-शैली का दर्पण भी। इनकी अनूठी सांस्कृतिक विशेषताएँ तथाकथित विकसित एवं सुसभ्य समाजों के लिए भी अनुकरणीय हैं। यथा-सामूहिक कल्याण की भावना, अपनी परंपरा और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने की प्रतिबद्धता, प्रकृति से रागात्मक संबंध, एकता और बंधुत्व की भावना, तथा आडंबरहीन स्वच्छंद जीवन। पारंपरिक संस्कारों, लोकगीतों, लोककथाओं और लोकनृत्यों द्वारा ये अपने हजारों वर्षों के सामूहिक जनजातीय अनुभवों और लोकसंस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं। पूर्वोत्तर राज्यों में मनाये जाने वाले अधिसंख्य पर्व-त्यौहार, ऋतु परिवर्तन और फसल चक्र पर आधारित हैं। इनके रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों और भाषा-बोली में भिन्नता है, लेकिन यहां की सभी जनजातियाँ प्रकृतिपूजक हैं, भले ही आज की युवा पीढ़ी पर उत्तर आधुनिक सांस्कृतिक क्षरण के स्पष्ट प्रभाव दिख रहे हैं।

भारत के विविध भाषीय समाज को हिंदी एक व्यापक संप्रेषण-प्रणाली से जोड़ती है। हिंदी भाषा की व्यापकता संबंधी विशिष्टताओं के बावजूद उत्तर-पूर्व राज्यों के जनजातीय बहुल समाज में हिंदी के प्रति लगाव क्षीण है, और फलस्वरूप अन्य हिंदीतर भाषा-भाषी प्रांतों की तरह यहाँ भी व्यावहारिक हिंदी के नाम पर कागजी हिंदी सिखाई जाती है। द्वितीय भाषा-शिक्षण के रूप में हिंदी में दी जा रही शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति में आपसी एकरूपता का सर्वथा अभाव भी हिंदी ज्ञानार्जन की राह में बड़ा अवरोध है। प्रशिक्षित अध्यापकों और भाषाजन्य

लगाव के अभाव में भी जो विद्यार्थी कक्षा में भाषा-विशेष में पारंगत मान लिया जाता है, वह जब अपने भाषा ज्ञान को लेकर कक्षा के बाहर समाज में जाता है तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यही विद्यार्थी जब विश्वविद्यालय स्तर पर एक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन करने आता है तो उससे अपेक्षा की जाती है कि वह हिंदी की साहित्यिक रचनाओं को समझने की क्षमता विकसित करे तथा उस माध्यम से उत्पन्न अपने ज्ञान को हिंदी समीक्षा पुस्तकों की सहायता लेकर, प्रचलित शैली में परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर के रूप में अभिव्यक्त कर दे। परंतु विद्यार्थी अपने विषय में उपाधि प्राप्त करने के बावजूद पाठ्य विषय को सम्यक ढंग से विवेचित-विश्लेषित करने में असमर्थ रहता है। फिर नौकरी पाने के लिए साक्षात्कार के समय यह कहने को बाध्य हो जाता है कि कबीर या फलां साहित्यकारों के विषय में उसे कुछ याद नहीं आ रहा, पढ़ा तो है किंतु कई वर्ष बीत जाने के कारण उसे कुछ स्मरण नहीं रहा। ऐसी विडंबनापूर्ण स्थिति में हिंदीतर भाषा- भाषी जनजातीय बहुल इन राज्यों में विश्वविद्यालयी स्तर पर हिंदी भाषा-शिक्षण के मार्ग में आने वाली बाधाओं और उनके समाधान संबंधी स्रोतों को खोजना और इन चुनौतियों के निराकरण की दिशा में ठोस उपाय ढूँढ़ना अत्यंत आवश्यक है।

वस्तुतः भाषा-शिक्षण एक व्यावहारिक विधा है। इसका सीधा संबंध तीन विषयों से दिखाई पड़ता है। एक शिक्षाशास्त्र, दूसरा भाषाशास्त्र और तीसरा प्रबंधशास्त्र। इन तीनों का उपयुक्त एवं कार्यकारी सामंजस्य भाषा-शिक्षण को सफल बनाता है। भाषा- शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शिक्षार्थी की मातृभाषा, उसकी संस्कृति और आचार-व्यवहार से पूर्णतया परिचित हो, ऐसे में वह छात्रों से सफल संप्रेषण स्थापित करने में सफल होता है। उत्तर-पूर्व के राज्यों में विशेष रूप से दक्ष एवं प्रवीण प्रशिक्षित हिंदी अध्यापकों का न होना गंभीर चिंता का विषय है। इसलिए इन राज्यों के जनजातीय बहुल लोगों की मानसिक संरचना, मस्तिष्कगत संप्रत्यय एवं नितांत वैयक्तिक संवेदना को छू पाने में कई बार हिंदी भाषा अपने को असमर्थ पाती है। हिंदी क्षेत्रों से गए शिक्षक उनकी जनजातीय भाषाओं से परिचित तक नहीं होते। यद्यपि कतिपय ऐसे कारण एवं समस्याएँ उनके सामने उपस्थित होती हैं जिनके कारण इन राज्यों में बोली जाने वाली भाषाओं का सहज अधिगम संभव नहीं हो पाता। यथाः

- इन भाषा-बोलियों में वर्गीय विविधता बहुत अधिक है।
- प्रत्येक भाषा को बोलने वालों की संख्या बहुत कम है।
- इन भाषाओं को बोलने वालों में परस्पर भाषिक एवं रीति-रिवाज संबंधी भिन्नता भी है।
- इस क्षेत्र में अवस्थित असम राज्य में हिंदी- भाषियों के प्रति दुर्भावना एवं अरुणाचल प्रदेश में भारत के अन्य भू-भागों की भाँति निर्बाध प्रवेश न होने के कारण यहाँ की जनजातियां भारत की मुख्य एवं सांस्कृतिक जीवनधारा से अभी पूर्णतया परिचित नहीं हैं।
- शिक्षा-स्तर की दृष्टि से ये राज्य अन्यों की तुलना में पिछड़े हुए माने जा सकते हैं।
- अनेक भाषाओं में लिखित साहित्य का नितांत अभाव है, यह विरले ही प्राप्त होता है। अध्ययन भी बहुत कम हुआ है।
- सुप्रशिक्षित हिंदी अध्यापकों का अभाव, उनकी समुचित प्रशिक्षण व्यवस्था की कमी के कारण भी यहाँ हिंदी शिक्षण उतना सफल नहीं हो पाता है।
- इन प्रदेशों के छात्रों के पूर्व ज्ञान, जीवन-पद्धति तथा युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार की गई पुस्तकों के अभाव के कारण हिंदी भाषा- शिक्षण असफल हो जाता है।

- इन राज्यों में हिंदी सीखने और सिखाने वाले दोनों के ही स्तर, रुचि, लक्ष्य और परिवेश में उदासीनता परिव्याप्त है। अतः सुधार हेतु उच्च शिक्षा के मूलभूत ढाँचें में परिवर्तन लाना आवश्यक है।
- अन्य भाषा-शिक्षण के संदर्भ में व्यक्ति में भाषिक क्षमता नियंत्रित प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न करनी पड़ती है और उसका व्यवहार एक नियंत्रित प्रक्रिया के द्वारा सिखाया जाता है। हिंदी भाषा के प्राध्यापक प्रायः इस प्रक्रिया को समझ नहीं पाते और हिंदी पढ़ाने के नाम पर बहुधा हिंदी साहित्य, देवनागरी लिपि अथवा विधि-निषेधात्मक व्याकरण पढ़ाते हैं। इतना ही नहीं, कक्षा में हिंदी कोश रटवाने का भी यत्न चलता रहता है ताकि हिंदी विद्यार्थी कुछ आधारभूत शब्दों को जान लें और जरूरत पड़ने पर प्रयोग कर सकें। लेकिन, इन सारे प्रयासों के फलस्वरूप वे जो भाषा थोड़ी-बहुत सीख पाते हैं, वह एक गौण-उत्पादन बनकर रह जाती है।

उत्तर-पूर्वी राज्यों के वासियों को हिंदी सीखने, बोलने, समझने और लिखने में जो कठिनाइयाँ आती हैं, उनको निम्नलिखित व्याकरणिक आधारों पर वर्गीकृत कर समझ सकते हैं:

(i) ध्वनिगत समस्याएँ: प्रत्येक व्यक्ति का उच्चारण सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। हिंदी ध्वनियों के उच्चारण में विद्यार्थी की मातृभाषा अपना दखल देती है। तिब्बती-बर्मी या नाग परिवार के अंतर्गत आने वाली यहां की भाषाओं का सर्वेक्षण और भाषावैज्ञानिक भाषाओं में ध्वनि बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इन भाषाओं में एक ही ध्वनि के कई स्वरूप हैं और उनके अनुसार शब्द के अर्थ भी बदल जाते हैं। हिंदी में इन ध्वनियों का सुस्पष्ट उच्चारण सहज नहीं है। हिंदी और यहाँ की जनभाषाओं के उच्चारण का सूक्ष्मता से अवलोकन कर उच्चारणगत दोषों को दूर करना हिंदी शिक्षकों के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। इसके लिए जरूरी है कि विद्यार्थी हिंदी ध्वनियों का उच्चारण कैसे करते हैं, वे इसे पकड़ें और फिर उसे सुधारने का प्रयास करें। कतिपय शब्दों की ध्वनियां जिनका उच्चारण वे हिंदी-भाषियों की तरह न कर कुछ भिन्न ढंग से करते हैं, निम्निलिखित हैं:

1. तिब्बती-बर्मी परिवार के अंतर्गत शब्द में तालव्य ध्वनि च, छ आती है, वहाँ इसका उच्चारण अंतस्थ स की तरह होता है, यथा-चटनी-साटोनी, चन्दा-सान्दा, चादर-सादोर, चाबी-साबी, चाय-साय, चीनी-सेनी, चील-सील, चिकन चिली-सिकन सिली, छागली-सागली, माछ- मास आदि। हिंदी के लिए यह एक प्रकार की वर्तनीगत अशुद्धि है जो कि नाग परिवार की भाषाओं की प्रवृत्ति है जिसके अंतर्गत स्पर्श का लोप होकर स्पर्शहीन ध्वनि का व्यवहार होने लगता है। अध्यापक को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी/शिक्षार्थी पाठ को ठीक-ठीक समझे। इस बात की आश्वस्ति के लिए उन्हें 'प्रयत्न और भूल' (Trial & Error) सिद्धांत को अपनाना होगा।
2. ये ऋ स्वर का उच्चारण रु की तरह करते हैं, यथा; गृह-ग्रुह, पृथक-प्रुथक, नृत्य-न्रुत्य।
3. तालव्य ज और झ ध्वनियां वर्णमाला में हैं लेकिन, उच्चारण में नहीं। इसलिए इनका उच्चारण अँग्रेजी की ऊष्म ध्वनि जेड (z) की भांति करते हैं।
4. इनकी भाषाओं में उच्चारण और लेखन में भेद होने के कारण कतिपय शब्दों का ओकाराभिमुख उच्चारण करते हैं पर लिखते अकाराभिमुख है, यथा- 'गोरू' को लिखेंगे 'गरु' और पढ़ेंगे 'गोरू'।
5. पूर्वोत्तर की भाषाओं में दीर्घ स्वर अवश्य लिखे जाते हैं किंतु, उनका उच्चारण ह्रस्व करते हैं। ईकारान्त शब्दों को इकारान्त, ऊकारान्त को उकारान्त के रूप में उच्चरित करते हैं। यथा- पाखी (पक्षी) पाखि, मोती-मोति,

बाजू-बाजु।

6. संयुक्त व्यंजन क्ष का उच्चारण क्ख करते हैं- रक्षा-रक्खा, क्षुद्र-खुड़।
7. जब क्ष ध्वनि के साथ म ध्वनि का योग होता है, तब म ध्वनि का उच्चारण नहीं होता है। साथ ही अंतिम ध्वनि को अनुनासिक बनाने के लिए चंद्रबिंदु का भी प्रयोग करते हैं, यथाः लक्ष्मी-लोक्खीं।
8. अरुणाचल प्रदेश के 'आदी' जनजाति के भाषा- भाषी कंठ्य, दन्तोष्ठ, द्वयोष्ठ महाप्राण ध्वनि घ, ध, भ का प्रयोग नहीं करते।
9. पूर्वोत्तर भाषा-भाषी दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त संज्ञाओं का बहुवचन रूप बनाते समय उनमें बहुवचन प्रत्यय जोड़ने के पूर्व उन्हें ह्रस्य कर इकारान्त, उकारान्त नहीं करते, यथाः वे नदी से नदीयाँ और वधू से वधूएँ रूप गढ़ लेते हैं।
10. यहाँ क्रिया में तिङ्तीय पद्धति है, अतः क्रिया में स्त्रीलिंग का प्रयोग प्रायः नहीं करते।
11. इन भाषाओं में अंतस्थ स ध्वनि ऊष्म ध्वनि ह में परिवर्तित हो जाती है, यथाः शंकर-हंकर, सुख- हुक, शुक्रवार-हुकुरवार।
12. ये मूर्धन्य पंचम ध्वनि का उच्चारण दन्तमूलीय अनुनासिक व्यंजन न की भाँति करते हैं, यथाः मणि- मोनी।
13. मूर्धन्य ष के बाद मूर्धन्य अनुनासिक व्यंजन ण के मूल से सृजित ध्वनि ष्ण का उच्चारण ष्ट करते हैं। यथा- कृष्ण-क्रस्टो, विष्णु-विष्टु।
14. 'ने' प्रत्यय तथा षष्ठी कारक का, के, की परसर्ग का सम्यक् प्रयोग करना नहीं जानते।
15. नाग भाषा परिवार (रामविलास शर्मा के अनुसार) के व्यक्ति हिंदी ड़, ढ़ ध्वनि का उच्चारण कर सकते हैं, किंतु य, म, व के उच्चारण में कठिनाई आ सकती है। ये र का उच्चारण ड़ करते हैंः परेश- पोड़ेख।
16. तालव्य श, मूर्धन्य ष और दन्त्य स ध्वनियाँ इनकी भाषा में अपने मूल रूप में उच्चरित नहीं होती हैं। इन ध्वनियों का उच्चारण अघोष कण्ठ ध्वनि अँग्रेजी 'एक्स' (x) के अनुरूप हो गया है।
17. यहाँ की देउरी आदि भाषाओं में घोष महाप्राण ध्वनि ख का उच्चारण अघोष अल्पप्राण क हो जाती है, यथाः खेत-केत, मक्खन मक्कन, खोना-कोना, खेतान-केतान इत्यादि।

(ii) संरचनामूलक समस्याएँ: उत्तर-पूर्व राज्य अरुणाचल प्रदेश में 24 भाषाएं और शताधिक बोलियां हैं। कामेंग जिले के निवासी मोडपा लोग अपने धार्मिक ग्रंथों के लिए तिब्बती लिपि का उपयोग करते हैं। हिंदी भाषा की लिंग-संरचना और क्रिया रूप यहाँ की भाषाओं की तुलना में जटिल हैं। हिंदी में प्राप्त पदबंध तथा वाक्य-स्तर पर लिंग, वचन की अन्विति भी छात्रों के लिए कठिन समस्या साबित हो सकती है क्योंकि यहाँ की भाषाओं में पदबंध एवं वाक्य स्तर पर लिंग, वचन और पुरुष अन्विति सदैव समान रूप में रहती है। साथ ही वाक्य संरचना भी हिंदी की तुलना में कुछ भिन्न है। पूर्वोत्तर राज्यों की अधिसंख्य भाषाओं की वाक्य संरचना हिंदी की भाँति S-O-V (कर्ता-कर्म- क्रिया) है, किंतु 'खामती' में यह क्रम कुछ भिन्न अंग्रेजी वाक्य संरचना के अनुरूप S-V-O (कर्ता क्रिया-कर्म) क्रम में लिखा जाता है। क्रिया का यही रूप सभी संख्या, वचन, पुरुष और लिंग में प्रयोग किया जाता है। यहाँ की कुछ भाषाओं में प्रश्नवाचक एवं नकारात्मक वाक्यों के निर्माण हेतु क्रिया के रूप में बदलाव लाया जाता है। सामान्यतया इस रूप के लिए क्रिया के पहले अक्षर के मध्य भाग में 'मा' 'मे' प्रत्यय जोड़ा जाता है। यहाँ की कुछ भाषाओं में 'माता' 'पिता' अथवा 'भाई' आदि संबंधों के संबोधनों के लिए कोई शब्द नहीं है। 'सिंडफो' में नातेदारी

का शब्द हमेशा व्यक्ति विशेष के साथ सम्मानसूचक शब्द लगाकर अभिव्यक्त किया जाता है। यथाः (anu) अनु-मेरी माँ' / (Inu) इनु-तुम्हारी/आपकी माँ / (gnu) 'ज्ञनु-उसकी माँ'। उनकी जीवन शैली के अभिन्न अंग, टोकरी को भी वे कार्य के अनुरूप अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। ज्वार ढोने वाली टोकरी को वे 'करन' कहते हैं तो कपड़े रखने की टोकरी को 'कुसांग'। 'खाँग' चावल रखने की टोकरी होती है और 'फेंग-पा' मछली ढोने वाली टोकरी को कहते हैं। पूर्वोत्तर के एक राज्य अरुणाचल प्रदेश की प्रायः सभी जनजातियों के सार्वजनिक शयनागार हैं जो अलग-अलग नामों से अभिहित हैं। 'नाक्ते' जनजाति में इसे 'पंग' कहते हैं तो 'वाङचू' में यह 'पाह' नाम से प्रचलित है। प्रकृति के साथ आदिवासी समाज गहरे एवं आत्मीय रूप से जुड़े हुए हैं। यहाँ लगभग पूरे वर्ष वर्षा होती है। इसलिए बादल, वर्षा, नदी, झरने आदि के विभिन्न अर्थछाया वाले अनेक शब्द इनकी भाषा में उपलब्ध हैं।

(iii) अर्थगत समस्याएँ- हिंदी की विभिन्न अभिव्यक्तियों का संस्कार इन जनजातियों को ज्ञात नहीं है। अतः इन्हें शब्दों के अर्थ समझने में कठिनाई होती है। असमी भाषा को छोड़ दें तो हिंदी की तुलना में पूर्वोत्तर राज्यों की जनजातीय भाषाएँ अधिकतर सीमित शब्द-भंडार की हैं और शब्दों के अर्थ भी सरल हैं। विभिन्न स्तरों पर आदिवासी/जनजातीय विद्यार्थियों की जो त्रुटियाँ संज्ञान में आयी हैं, उन्हें निम्नांकित सारणियों द्वारा दर्शाया जा सकता है।

ध्वनिगत शुद्धियाँ अशुद्धियाँ:

शुद्ध रूप: खेत, मक्खन, सोना, खेतान, चटनी, चंदा, चादर, चाबी, चिकन चिली, छागली, माछ, बधुएँ, नदियाँ, चाय, चीनी, चील, चूना, शंकर, सुख, शुक्रवार, ऋषि, गृह, कृपा, लक्ष्मी, कृष्ण, मणि।

अशुद्ध रूप: केत, मक्कन, होना, केतान, साटोनी, सान्दा, सादोर, साबी, सिकन-सिली, सागली, मास। वधूएँ, नदीयाँ, साय, सेनी, सील, सून, हंकर, हुक, हुकुरवार, रुसु, क्रुपा, लोक्खीं, क्रस्टो, मोनी।

'ने' के प्रयोग में अशुद्धि:

शुद्ध रूप: उसकी एक लड़के से शादी हो गयी।
चिड़ियाँ घोंसले में रहना चाहती हैं।
वह जल्दी जाना चाहती है।
उसे भूख लगी थी।
वह लंबी साँस लेने लगा।

अशुद्ध रूप: उसने एक लड़का से सादी हो गया।
चिड़िया ने घोंसले में रहना चाहती है।
उसने जल्दी जाना साहती है।
उसने भूख लगी थी।
उसने लंबी सासे लेना लगा।

वर्तनीगत अशुद्धियाँ:

शुद्ध रूप: महिला, स्थिति, वस्तु, दृश्य, अपना।

अशुद्ध रूप: महेला, स्थित, वास्तु, द्रिश्य, आपन/अप्ना।

शुद्ध रूप: साधु, सोचते, झीना, अंडा, मोटा।

अशुद्ध रूप: सादु, सचते, जीना, अंदा, माटा।

शुद्ध रूप: मिश्र, विष्णु, ले आया, खुश, जानवरों।

अशुद्ध रूप: मिक्ष, विश्नु, लेया, खुस, जानावरो।

शुद्ध रूप: नंगा, शरीर, आनंद, खुद, बहुत।

अशुद्ध रूप: नांगा, सरिर / सारिर, आंन्द, खुट, भोत ।

'का' 'के' 'की' के प्रयोग में अशुद्धि-

शुद्ध रूप: घर की तरफ, लड़की की दोस्ती, हमारी लव मैरिज हुई है। हम लोगों के शरीर में दर्द हो रहा है। मेरे मन का बोझ उतर गया।

अशुद्ध रूप: घर तरफ (की)।

लड़की का दोस्ती (की)।

हम लोगों का लव मैरिज हुई है। (की)।

हम लोगों का शरीर में दर्द हो रहा है। (के)

मेरा मन की बोज़ उत्तर गाया। (का), (बोझ)

भाषा-अधिगम के चार कौशल हैं- श्रवण, वाचन, भाषण एवं लेखन। इन चारो कौशलों में विद्यार्थी को अधिकाधिक निपुण बनाना ही भाषा-शिक्षण का उद्देश्य है। भाषा अधिगम की अवधारणा प्रत्यक्ष रूप से व्यवहार से संबंधित है। वस्तुतः सत्य यही है कि जिस भाषा का हम जितना प्रयोग करेंगे, उसमें उतनी जल्दी सिद्धहस्तता प्राप्त होगी। किंतु उत्तर-पूर्वी राज्यों में घर हो, परिवार हो, बाजार हो, मित्र/परिचितों का साथ हो, सभी जगह स्थानीय भाषा का परिवेश होने के कारण हिंदी को पूरी तरह से मुखर हो पाने का माहौल कम मिल पाता है, नतीजा वही कि शुद्ध हिंदी सीखना उनके लिए आग का दरिया को पार करने जैसा हो जाता है। किंतु, रुचि और अभ्यास के कारण हिंदी फिल्मों और फिल्मी गानों के प्रभाव से वे बम्बइया हिंदी जल्दी सीख जाते हैं। विद्यार्थियों की या भाषा सीखने वालों की वास्तविक दुनिया हिंदी भाषा के जितनी निकट आए, उतना ही भाषा-शिक्षण समृद्ध और प्रभावशाली होता है। इससे उनके मन में हिंदी के प्रति भी अपनत्व की भावना जनमती है और वे जल्दी ही हिंदी सीखने में समर्थ होते हैं। इसीलिए कक्षा में कुछ मूलभूत बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है, जैसे- 1. डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने पुनरावृत्ति अभ्यास, योजना अभ्यास, सामान्य रूपांतरण अभ्यास, रूपांतरण विस्तारण अभ्यास, रूपंतरण संकोचन अभ्यास, संदर्भपरक अभ्यास नाम से उदाहरण सहित अभ्यास दिए हैं, जो उनके अनुसार भाषा की संरचना-व्यवस्था उत्पन्न करने में समर्थ हैं। इन अभ्यासों को पाठ्यक्रम में शामिल करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

2. विद्यार्थी की धीमी प्रगति को जाँचने के लिए उन्हें क्रमानुसार पाठ पढ़ाए जाने की जरूरत होती है। बीस से पच्चीस पाठ क्रमानुसार उचित ढंग से पढ़ाए जाने के बाद उनकी बुनियाद ठीक-ठाक हो जाती है। इस दौरान हिंदी शिक्षक को चाहिए कि वे हिंदी और शिक्षार्थी की मातृभाषा की समानांतर ध्वनियों का पहले अध्ययन करवायें, फिर भिन्न ध्वनियों को लेकर उनका बेहतर अभ्यास कराया जाना चाहिए। इतने अभ्यास के बाद सीखी हुई ध्वनियों से शब्द एवं वाक्य का गठन करवाकर तथा उनके उच्चारण का अभ्यास करवाकर उनके अर्थभेद को समझाना चाहिए। बाद में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों, छोटे-छोटे अभ्यास प्रश्नों, मौखिक उच्चारण आदि से समय-समय पर उनकी प्रगति का मूल्यांकन करना सम्यक हिंदी शिक्षण हेतु अनिवार्य है।

3. हिंदी शिक्षण के दौरान पाठ्यक्रम में जनजातीय मिथकीय-विश्वासों, प्रतीकों, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन के कुछ शब्दों को हिंदी शब्दकोश में सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए ताकि उनकी संस्कृति अनछुए रूप में

सुरक्षित रहे। सामाजिक ढाँचे के अध्ययन के लिए उनकी सामाजिक-व्यवस्था से ही विषय (subject matter) चुना जाए। स्थानीय भाषाओं से दिन, तारीख, गिनती के अंक लेकर तथा लोक कथाओं अथवा लोकगीतों का लिप्यंतरण कर उन्हें पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर, हिंदी के समानांतर पढ़ाया जाना उपयोगी साबित हो सकता है।

4. द्वितीय भाषा-शिक्षण के रूप में हिंदी को पढ़ते समय स्थानीय भारतीय भाषा के साथ हिंदी की तुलना करके भेद और अभेद के बिंदुओं को पहले दृष्टिपथ में रखते हुए, पढ़ाने के क्रम में उन्हें वरीयता दी जानी चाहिए और भेदपरक अंश से अन्य पाठों को क्रमशः बाद में पढ़ाया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में तुलनात्मक अध्ययन के प्रति अभिरुचि बढ़ेगी और वे अनुवाद की ओर आकृष्ट होंगे।

5. विश्वविद्यालयी स्तर पर भाषा-शिक्षण में क्रमादेशी अधिगम, अभिरचना अभ्यास, भाषा प्रयोगशाला, शिक्षण मशीन के साथ-साथ अब कंप्यूटर, मल्टीमीडिया टेली कॉन्फ्रेन्सिंग आदि नवीन उपलब्धियों को उपयोग में लाया जाना चाहिए।

6. हिंदीतर भाषा-भाषियों को हिंदी सिखाने में अनेक समस्याएँ आती हैं, ये समस्याएँ विकट रूप धारण तब कर लेती हैं जब शिक्षार्थी आर्येतर क्षेत्र के हों। इसलिए डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने यह सुझाव दिया कि द्वितीय भाषा के दो उपवर्ग बनाए जाएँ- स्वजातीय और विजातीय। हिंदी भाषा शिक्षक को पहले विद्यार्थियों को उपर्युक्त आधार पर बाँटकर, इनकी मुश्किलों को समझकर उनका निदान ढूँढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए। उदाहरण के लिए अरुणाचल प्रदेश में मैदानी इलाकों से गए आर्येतर भाषियों, (जो उच्च पदस्थ हैं), की हिंदी एवं वहाँ पले-बढ़े लोगों की हिंदी व अल्पशिक्षित एवं निम्न पदस्थ लोगों की अपनी क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित हिंदी और वहां के मूल बाशिंदों की हिंदी, फिल्मों एवं टी.वी. सीरियलों से प्रभावित हिंदी ये सभी रूप मिलकर एक अलग तरह की हिंदी का निर्माण करते हैं, जो न तो पिजिन है और न क्रियोल। यह हिंदी का बिगड़ा हुआ रूप है और उसे ही थोड़ा-बहुत सीखकर विद्यार्थी हिंदी कक्षा में आते हैं, बस यही जरूरत है कि इन विद्यार्थियों को मानकीकृत और परिष्कृत हिंदी-प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाए। इनके लिए अतिरिक्त कक्षाएँ, समूह परिचर्चा और गाष्ठियों का आयोजन किया जाए। कुल मिलाकर यह कि हिंदी शिक्षकों को हिंदीतर क्षेत्र में, विशेषतः आर्येतर भाषी क्षेत्रों में, बहुत परिश्रम करने की आवश्यकता है।

7. भाषा सीखने के लिए भाषा सम्मिलन समारोह या भाषोत्सव विश्वविद्यालय में उपादेय सिद्ध हो सकता है जिसमें कक्षा को विभिन्न समूहों में बाँटकर उनसे समाज के विभिन्न कर्मियों की भूमिका निभाने के लिए कहा जाए। इस कक्षा में संवाद का प्रारंभ अध्यापक स्वयं करे और विद्यार्थी उस संवाद को आगे बढ़ाकर एक स्वाभाविक वातावरण का निर्माण करें। इससे उन्हें भाषा सीखने का स्वाभाविक वातावरण उपलब्ध हो सकेगा और जब वास्तविक जीवन में वे इन सीखे हुए पाठों का सही-सही उपयोग करेंगे, तब उनमें आत्मविश्वास बढ़ेगा और दुगुने उत्साह से आगे की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहेंगे।

8. हिंदी भाषा-शिक्षण द्वारा विभिन्न कौशलों का विकास करना चाहिए। जैसे-भाषा-कौशल, श्रवण- कौशल, पठन-कौशल, लेखन कौशल। विद्यार्थी में इन कौशलों के विकास के लिए छोटे-छोटे सेमिनार, विषय से संबंधित वाक्य लेखन प्रतियोगिताएँ, कार्यशालाएँ आदि का आयोजन समय-समय पर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाओं को तैयार करने की प्रेरणा देकर उनकी सृजनात्मक क्षमता को सींचना भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है। इसका विद्यार्थी में अच्छा लेखक बनने का भी संवर्धन होगा।

9. भाषा शिक्षक का यह व्यावसायिक और नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने अभिव्यंजना कौशल और भाषा विषयक ज्ञान में निरंतर अभिवृद्धि करता रहे। इसके अंतर्गत उसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, भाषा-विज्ञान जैसे विषयों से प्रक्रिया-प्रविधि और सहायता लेनी चाहिए क्योंकि भाषा अर्जन के सिद्धांत के तार मनोविज्ञान से जुड़े हैं, भाषा समाज संदर्भित है और भाषा को समझने एवं विश्लेषण की अंतर्दृष्टि भाषा-विज्ञान देता है।

10. भाषा सीखने की लालसा विकसित करने हेतु शिक्षकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों को रटने-रटाने की प्रवृत्ति का परित्याग कर ग्रंथालय जाकर स्वयं भी भाषा सीखने के प्रयत्नों को प्रोत्साहन दें क्योंकि शिक्षण-कला में ग्रंथालयों का उपोग ही शिक्षा में गुणात्मक विकास ला सकता है।

11. हिंदीतर भाषी हिंदी सीखने के लिए प्रायः तभी तत्पर होते हैं जब उन्हें हिंदी भाषा से तात्कालिक लाभ और सुविधा प्राप्त होने की आशा होती है। इसलिए विश्वविद्यालय स्तर पर जो हिंदीतरभाषी विद्यार्थी हिंदी को उच्चतर शिक्षा का विषय बनाते हैं, उसके पीछे उनका भावात्मक लगाव कम और अन्य कारण (यथा अन्य रुचिकर विषयों में प्रवेश न मिल पाना, छात्रवृत्ति, निकटस्थ /आत्मीय जन का हिंदी विषय ले लेना, भविष्य में नौकरी मिलने की प्रत्याशा आदि) अधिक होते हैं। उन्हें यह विश्वास होना चाहिए कि यह भाषा उनके व्यावसायिक अभिप्रेतों को सफल बनाने तथा पूरे देश के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक संपर्क साधने का सशक्त माध्यम बनेगी। विद्यार्थियों से भी अपेक्षित है कि हिंदी सीखते समय केवल भाषिक ग्रहणशीलता और निस्पृहता का भाव न रखकर आत्मीयता का भाव रखें।

12. भाषा-शिक्षण के दौरान कक्षा में स्वाभाविक वातावरण के निर्माण के निमित्त संप्रेषण विधि को अपनाना कारगर होता है, किंतु, 'उस अध्यापक को भी जो पूर्णतः संप्रेषण विधि की ओर झुकता है, समझ लेना चाहिए कि व्याकरणिक एवं स्वनिक गलतियों की अधिकता, संप्रेषण को नष्ट भी कर सकती हैं। (मॉरो, 1981)

13. इन विद्यार्थियों की ध्वनिगत समस्याओं को दूर करने के लिए इन्हें स्वन-विज्ञान की जानकारी देना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि हिंदी भाषा शिक्षक केवल मौखिक व्याख्यान न देकर चार्ट, डायग्राम, चित्र, टेप-रिकॉर्डर एवं अन्य ध्वनि- उपकरणों आदि का भी प्रयोग करें। सम्यक श्रवण- वाचन व प्रयत्न से उच्चारणगत दोष भी दूर हो जाता है। घोष अघोष तथा अल्पप्राण एवं महाप्राण ध्वनियों का भेद समझकर शुद्ध उच्चारण करने में यह विधि बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। भाषा-शिक्षण में ध्वनियों का विधिवत एवं वैज्ञानिक शिक्षण कारगर होता है।

14. काइमोग्राफ का प्रयोग कर घोषत्व एवं अघोषत्व की सटीक स्थिति का अंकन किया जा सकता है। हिंदीतरभाषियों के लिए यह बेहद जरूरी होता है क्योंकि अपनी मातृभाषा के व्याघात (interference) के कारण वे हिंदी की महाप्राण ध्वनि को अल्पप्राण और घोष ध्वनि का उच्चारण अघोष ध्वनि की तरह कर देंगे, जिससे अर्थ का अनर्थ होने की पूरी संभावना बनी रहेगी।

15. टेप रिकॉर्डर का प्रयोग विद्यार्थी को शुद्ध उच्चारण सुनाने, उनके उच्चारण को मिलाने, अशुद्धियों को पकड़ने, ध्वनियों की अनेक बार पुनरावृत्ति कराने और उसके अर्थ को भी समझने में सहायक होता है। यह यंत्र भाषा-विशेष की पद्धति के अनुसार भाषा का वांछनीय स्वरूप भी प्रस्तुत करता है। जैसे र का उच्चारण ड़ ध्वनि के उच्चारण भेद को टेप रिकॉर्डर के द्वारा आसानी से पकड़ा-समझा जा सकता है।

16. युगीन आवश्यकताओं और समाज द्वारा निर्धारित शिक्षा के लक्ष्य और हिंदी के प्रयोजनमूलक आयामों की पूर्ति हेतु हिंदी का पाठ्यक्रम प्रांतीय प्राथमिकताओं और सामासिक भारतीय संस्कृति का सामंजस्य करते हुए निर्मित करना चाहिए और निर्धारित अवधि में इसके सम्यक पठन-पाठन की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

17. भाषा-शिक्षण एवं पाठ्यक्रम निर्धारण अत्यंत संवेदनशील मुद्दा है। भाषा शिक्षक से यह अपेक्षित है कि अध्यापन में यांत्रिकता, पूर्वग्रह और स्वभाषिक आग्रहों का परित्याग कर संतुलित भूमिका का निर्वहन करे। हिंदीतर भाषा-भाषियों के भाषा-शिक्षण में व्यावहारिक ज्ञान-परीक्षण एवं अध्ययन पर्यटन, यथा-हिंदी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में हिंदी विषयों की शिक्षण पद्धति से परिचय और संवाद, ग्रंथालयों का अवलोकन, यात्रा प्रतिवेदन का प्रस्तुतिकरण आदि हितकर हो सकते हैं। इसके लिए पाठ्यचर्या में परिवर्तन और पाठ्यक्रम के किसी प्रश्नपत्र में कुछ अंक निर्धारित करना समीचीन होगा।

18. हिंदी भाषा-शिक्षण की विविध प्रणालियों को आत्मसात कर उनका अद्यतन न होना भी इसकी राह में बड़ा अवरोध है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी शिक्षण में हिंदीतर विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता को समझकर साहित्य के क्षेत्रों में हो रहे नये शोध, नये प्रयोगों को स्थान देना चाहिए।

*(**लेखकीय परिचय :** प्रो. अवधेश नारायण मिश्र काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के हिंदी विभाग के प्राक्तन प्रोफेसर हैं। हिंदी साहित्य, समकालीन कविता एवं गीत, भाषा-विमर्श, शैली विज्ञान एवं प्रयोजनमूलक हिंदी के क्षेत्र में आपकी विशेषज्ञता और योगदान उल्लेखनीय है। मोबा: 9415991344, ई-मेल : anmbhu@gmail.com; / डॉ. मीना कुमारी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में सहायक प्रोफेसर। आधुनिक हिंदी साहित्य एवं भाषा-विज्ञान में विशेष अध्ययन। जनकवि नागार्जुन पर आपकी दो पुस्तकें प्रकाशित हैं।*

मोबा: 9454187568, ई-मेल : drmeena.au@gmail.com)